धर्मवीर भारती कृत अंधायुग के युगीन संदर्भ : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ.लालचन्द कहार
व्याख्याता हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय कोटा (राज.)

सारांश

अंधायुग वर्तमान राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश की रचना है, क्षयग्रस्तता, मूल्यांधता, मर्यादाहीनता, स्वार्थपरता, सत्तालोलुपता, चरित्रहीनता, बर्बरता, संषय और कुण्ठाग्रस्तता चाहे महाभारत काल की हो, चाहे प्रथम या द्वितीय विश्वयुद्ध की या राश्ट्रीय स्तर पर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सन् 1950–51 के आस–पास की हो, कोई अन्तर नहीं पड़ता। किसी भी देषकाल में स्थितियों, मनोवृत्तियों और आत्माओं की विकृति तथा दिग्भ्रम, मदांधता एवं विनाष ही 'अंधायुग' के जनक बनते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर हमने कम त्रासदी नहीं झेली। वह समय युद्ध, हिंसा, प्रतिहिंसा, विभाजन, त्याग, बलिदान, संघर्ष, अमानवीय कृत्य, चरित्रहीनता और पाशविकता का ही व्यापक परिदृश्य था। जैसाकि लिखा है कि लम्बे संघर्ष, बलिदान और त्याग के बाद हमने स्वतंत्रता पाई थी, लेकिन उसके साथ ही हमें विभाजन का अभिशाप भी मिला था। संघर्ष के समाप्त होते ही सत्ता और भोग का युग आया। आशाएँ और कल्पनाएँ निराधार सिद्ध हुई। भव्यता के प्रभामण्डल निस्तेज पड़ने लगे और नायकों तथा परिस्थितियों में अन्तर्निहित असंगतियाँ, स्वार्थलिप्सा, मर्यादाहीनता, अविवेक और खोखलापन स्पश्ट दिखने लगा। कल के चांद और सूरज आज पांव में चुभने वाले कांच के टुकड़े बन गए। अन्धायुग' हमारी मर्यादा–खण्डन, विवेकान्धता, मूल्यहीनता से उपजा है। हम ऐसी अर्थहीन दिशाओं में जा रहे है जो हमारी महिमा को खण्डित कर देगी, जहाँ हमारे सब स्वप्न इतिहास के अंधेरों में खो जायेंगे, किन्तु वैयक्तिक स्वार्थों में अंधी हुई हमारी आँखों में और घोशित महानताओं से अभिभूत हमारे कानों ने न उन अंधेरों को देखा और न उनको पग–आहट को सुना। परिणति से अनभिज्ञ होते हुए भी हम मर्यादाओं को तोड़ते चले गये। इन मर्यादाओं को तोड़ने वाला, आत्मदानी पद्धतियों को भंग करने वाला कोई एक व्यक्ति नहीं, वरन् सारा समाज है।

कुंजी शब्द : अंधायुग, क्षयग्रस्तता, मूल्यांधता, मर्यादाहीनता, स्वार्थपरता, सत्तालोलुपता, चरित्रहीनता, बर्बरता, सशय और कुण्ठाग्रस्तता, पौराणिक, नवलेखन, युद्ध, हिंसा, प्रतिहिंसा, बर्बरता, सत्तालोलुपता, स्वार्थपरता, मर्यादा–भंजन

भूमिका :

धर्मवीर भारती आधुनिक भाव–बोध के कवि हैं। उन्होंने 'अंधायुग' के माध्यम से वर्तमान के अन्धकारपूर्ण परिवेष और भविष्य को रेखांकित करते हुए उसमें से ज्योति–कण चुनने का प्रयास किया है, साथ ही समय की चुनौतियों को काव्यात्मक धरातल पर उतारने का स्तुत्य प्रयास किया है।

अंधायुग के युगीन संदर्भः

अंधायुग वर्तमान राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश की रचना है, जैसाकि डॉ. जयदेव तनेजा ने लिखा है कि ''क्षयग्रस्तता, मूल्यांधता, मर्यादाहीनता, स्वार्थपरता, सत्तालोलुपता, चरित्रहीनता, बर्बरता, संषय और कुण्ठाग्रस्तता चाहे महाभारत काल की हो, चाहे प्रथम या द्वितीय विश्वयुद्ध की या राष्ट्रीय स्तर पर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सन् 1950–51 के आस–पास की हो, कोई अन्तर नहीं पड़ता। किसी भी देशकाल में स्थितियों, मनोवृत्तियों और आत्माओं की विकृति तथा दिग्भ्रम, मदांधता एवं विनाष ही 'अंधायुग' के जनक बनते हैं।''[1] राष्ट्रीय स्तर पर हमने कम त्रासदी नहीं झेली। वह समय युद्ध, हिंसा, प्रतिहिंसा, विभाजन, त्याग, बलिदान, संघर्ष, अमानवीय कृत्य, चरित्रहीनता और पाशविकता का ही व्यापक परिदृश्य था। जैसाकि लिखा है कि ''लम्बे संघर्ष, बलिदान और त्याग के बाद हमने स्वतंत्रता पाई थी, लेकिन

उसके साथ ही हमें विभाजन का अभिशाप भी मिला था। संघर्ष के समाप्त होते ही सत्ता और भोग का युग आया। आशाएँ और कल्पनाएँ निराधार सिद्ध हुई। भव्यता के प्रभामण्डल निस्तेज पड़ने लगे और नायकों तथा परिस्थितियों में अन्तर्निहित असंगतियाँ, स्वार्थलिप्सा, मर्यादाहीनता, अविवेक और खोखलापन स्पश्ट दिखने लगा। कल के चांद और सूरज आज पांव में चुभने वाले कांच के टुकड़े बन गए।''[2] हमारे चारों तरफ इसी अंधेपन और विवेकहीनता का आवरण बुनने लगा जिसका बिम्ब उपस्थित करते हुए कवि ने लिखा है ––

युद्धोपरान्त/ यह अंधायुग अवतरित हुआ
जिसमें मनोवृत्तियाँ– आत्माएँ सब विकृत हैं
है एक पतली डोर मर्यादा की
पर वह भी उलझी हुई दोनों पक्षों में
पर षेश अधिकतर हैं अंधे
पथभ्रश्ट, आत्महारा, विगलित
अपने अन्दर की अन्ध गुफाओं के वासी
यह कथा उन्हीं अन्धों की हे।[3]

अन्धायुग का कथानक महाभारतीय पौराणिक कथा पर आधारित है, किन्तु उसकी संगति पूर्णतः वर्तमान से है। अन्धायुग को नवलेखन की मौलिक अभिव्यक्ति बताते हुए डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है कि ''अंधायुग की मूल कथावस्तु यद्यपि पौराणिक है, पर उसका रेषा–रेषा आधुनिक युग की समस्याओं तथा स्थितियों से बना है। समसामयिकता के गम्भीर दायित्व का पूर्ण निर्वहण भारती की इस कृति में मिलता है ... अन्धायुग की मौलिक प्रेरणा वर्तमान युगीन आस्थाओं का विघटन है। आधुनिक युद्ध–संस्कृति के विकृत मूल्यों तथा जर्जर विष्वासों ने कवि के गहरे भाव–बोध को विकसित किया है।''[4] वास्तव में अन्धायुग स्वातंन्त्र्योत्तर भारतीय परिवेष की सशक्त अभिव्यक्ति है। इसका प्रत्येक पात्र, घटना, स्थितियाँ प्रतीक बनकर वर्तमान की अभिव्यंजना करते हैं। युग के अन्धेपन की सूचना हमें 'ठण्डा लोहा' की कुछ कविताएँ देती हैं। उस युगीन संवेदना का विकास 'अंधायुग' के रूप में हुआ है। भारती ने अन्धायुग के माध्यम से हमारी उस जर्जर भौतिक सभ्यता की व्याख्या की है जिसको हमने दो विश्वयुद्धों के बाद समााजिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक स्तर पर पाया है। ''मौजूदा सभ्यता या समाज या यथार्थ जैसा कि वह है – से किसी मानव–प्रगति की आशा नहीं की जा सकती। सामाजिक सम्बन्धों के यथार्थ से प्रेरित इस निराशा की भावना की तह में यह धारणा प्रतिष्ठित है कि मौजूदा सभ्यता के मसीहा जिस वर्ग या श्रेणी या तबके से निकले हैं, उनके नेतृत्व में चलने वाली सभ्यता या समाज कुछ भी कह लीजिए, का नाष अवश्यम्भावी है।''[5] वास्तव में जहाँ युग का सिंहासन अन्धों से षोभित हो, उससे और क्या आषा की जा सकती है ––

अन्धों से षोभित था युग का सिंहासन
दोनों ही पक्षों में विवेक ही हारा
दोनों ही पक्षों में जीता अन्धापन
भय का अन्धापन, ममता का अन्धापन
अधिकारों का अन्धापन जीत गया।[6]

'अन्धायुग' हमारी मर्यादा–खण्डन, विवेकान्धता, मूल्यहीनता से उपजा है। ''हम ऐसी अर्थहीन दिशाओं में जा रहे है जो हमारी महिमा को खण्डित कर देगी, जहाँ हमारे सब स्वप्न इतिहास के अंधेरों में खो जायेंगे, किन्तु वैयक्तिक स्वार्थों में अंधी हुई हमारी आँखों में और घोशित महानताओं से अभिभूत हमारे कानों ने न उन अंधेरों को देखा और न उनको पग–आहट को सुना। परिणति से अनभिज्ञ होते हुए भी हम मर्यादाओं को तोड़ते चले गये। इन मर्यादाओं को तोड़ने वाला, आत्मदानी पद्धतियों को भंग करने वाला कोई एक व्यक्ति नहीं, वरन् सारा समाज है।''[7] अन्धायुग इसी यथार्थ की व्याख्या करता है। गांधारी कहती है ––

हम सब के मन में कहीं एक अन्ध गह्वर है
बर्बर पशु, अन्धा पशु वास वहीं करता है
स्वामी जो हमारे विवेक का,
नैतिकता, मर्यादा, अनासक्ति, कृष्णार्पण
यह सब है अन्धी प्रवृत्तियों की पोषाकें।[8]

कहने का तात्पर्य यह है कि यह रचना 'अंधों के माध्यम से ज्योति' की और अतीत के माध्यम से वर्तमान की कथा है जिसके केन्द्र बिन्दु युद्ध, हिंसा, प्रतिहिंसा, बर्बरता, पशुता, सत्तालोलुपता, स्वार्थ, मर्यादा–भंजन आदि रहे हैं। भारती ने इन्हीं अमानवीय परिदृश्यों से सत्य के दुर्लभ कण को चुनने का बेहिचक सफल प्रयास किया है। ''एक स्थल पर आकर मन का डर छूट गया। कुण्ठा, निराषा, रक्तपात, प्रतिषोध, विकृति, कुरूपता, अन्धापन–इनसे हिचकिचाना क्या, इन्हीं में तो सत्य के दुर्लभ कण छिपे हुए हैं, तो इनमें क्यों न निडर धँसूँ।''[9]

हमने अपने आपको जैसाकि भारती ने कहा है, एक ऐसे धरातल पर पाया है कि जिसमें संस्कृति, धर्म, दर्शन, कला, शासन–व्यवस्था आदि सभी दृष्टियों से पतन के कगार पर खड़े हैं जहाँ आत्मघात के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं है – कृपाचार्य का कथन द्रष्टव्य है ––

यह आत्महत्या होगी प्रतिध्वनित
इस पूरी संस्कृति में
दर्शन में, धर्म में, कलाओं में
पूरी संस्कृति में
आत्मघात होगा बस अंतिम लक्ष्य मानव का।[10]

हम विजयी होकर भी विश्वास–ध्वस्त, शापग्रस्त, पुण्यहत, अस्त–व्यस्त ही रहे और प्राप्त 'सिंहासन जर्जर'[11] था। वस्तुतः स्वातंन्त्र्य की महामनीशा के चिरन्तन बोध और आत्ममनन की भूमियों का प्रस्तुत रचना में अपनी सम्पूर्णता में स्थान प्राप्त करने का आभास मिलता है। यही आभास कवि की महत्वपूर्ण उपलब्धि कहा जा सकता है जिसमें एक भव्य पुराख्यान अवतरण समाविश्ट है।''[12]

पौराणिक दृष्टि से 'अंधायुग' में महाभारत के अठ्ठारहवें दिन की संध्या से लेकर प्रभास–तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक के घटना–क्रम को प्रस्तुत किया है। इसका रचनाकाल 1954 है। कवि ने इसमें महाभारत की घटनाओं का आश्रय लेते हुए कल्पना का भी प्रयोग किया है। जैसाकि स्वयं कवि ने लिखा हे –– ''इस दृष्य काव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया है, उनके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आश्रय ग्रहण किया है। अधिकतर कथावस्तु प्रख्यात है, केवल कुछ तत्व 'उत्पाद्य' हैं– कुछ स्वकल्पित पात्र और स्वकल्पित घटनाएं।''[13] इसका कथानक

स्थापना से लेकर समापन तक पूर्ण व्यवस्थित है। यह दृष्यकाव्य पाँच अंकों –कौरवनगरी, पषु का उदय, अश्वत्थामा का अर्द्धसत्य, गान्धारी का शाप, विजयः एक क्रमिक आत्महत्या– में विभाजित है। प्रथम अंक से पूर्व स्थापना में कवि अंधे युग के अवतरण की सूचना देकर विशय में प्रवेश करता है तथा बीच में 'अन्तराल– पंख, पहिये और पट्टियाँ'– जिसमें वृद्ध याचक का कथन है, इसके माध्यम से दो अंकों के बीच की संगति जोड़ने के साथ–साथ युगीन स्थितियों–असंगतियों की व्याख्या स्वयं लेखक करता है और पांचवे अंक के बाद समापन में 'प्रभु की मृत्यु' का वर्णन है।

स्थापना – इसमें कवि मंगलाचरण की वैधानिकता के बाद 'उद्घोशणा' के माध्यम से युद्धोपरान्त हासोन्मुख 'अंधेपन' के अवतरण की सूचना देता है। इसमें कवि अंधेयुग की विषेशताओं –धर्म–अर्थ– हासोन्मुख, धरती का क्षय, सत्तालोलुपता, नकली चेहरों, कुण्ठित अन्तर, खण्डित और विकृत आत्माओं, मनोवृत्तियों, उलझी हुई मर्यादा को रेखांकित करता है तथा अन्धों के माध्यम से ज्योति की कथा बतलाकर अपनी आस्था का परिचय देता है।

प्रथम अंक – 'कौरव नगरी' तीन बार तूर्यनाद के उपरान्त कथागायन के साथ प्रारम्भ होता है। इस अंक में युद्ध से अभिषप्त कौरवनगरी की भयावह तथा पात्रों की मनस्थिति का चित्रण किया गया है। कौरवनगरी में दोनों पक्षों द्वारा तोड़ी गयी मर्यादा टुकड़े–टुकड़े होकर बिखर चुकी है। दोनो पक्षों ने कुछ भी नहीं जीता, खोया ही खोया है, अगर जीता है तो अन्धापन– भय का अन्धापन, ममता का अन्धापन, अधिकारों का अन्धापन। युद्ध के अन्तिम दिन संध्या में चारों तरफ उदासी ही उदासी छायी हुई है, कौरव महलों में मरघट की सी खामोषी और सूनापन छाया हुआ है। केवल दो थके हुए, बूढ़े प्रहरी घूम–घूम कर पहरा दे रहे हैं। उन्हें लग रहा है जीवन का कोई अर्थ नहीं रह गया है ––

अर्थ नहीं था/कुछ भी अर्थ नहीं था
जीवन के अर्थहीन/ सूने गलियारे में
अब थके हुए हैं हम / अब चुके हुए हैं हम।[14]

'कौरव नगरी' में चारों तरफ भयानक मौन का सन्नाटा छाया हुआ है तथा बादलों की तरह लाखों–करोड़ों नरभक्षी भूखे गिद्ध पाँखें खोले मँडरा रहे हैं। सिंहासन पर धृतराष्ट्र और गांधारी सिर झुकाये विह्वल भाव से संजय के संवाद की प्रतीक्षा कर रहे हैं। धृतराश्ट्र के जीवन में पहली बार आषंका व्यापी है। पुत्रषोक में डूबी गांधारी कृष्ण को इस मर्यादा–भंग एवं युद्ध का सूत्रधार मानती हुई 'वंचक' कहती है। बार–बार दुर्योधन की ही विजय की बात सोचती है –– ''होगी/ अवश्य होगी जय/ मेरी यह आषा/ यदि अन्धी है तो हो/ पर जीतेगा दुर्योधन जीतेगा।'' इसी अंक में वृद्ध याचक का प्रवेष होता है जिसकी भविश्यवाणी झूठी सिद्ध हो चुकी है, क्योंकि भविश्य के नक्षत्र की गति से भी ज्यादा षक्तिषाली कृष्ण ने सब कुछ बदल डाला– याचक कहता है–

जब कोई भी मनुश्य
अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को,
उस दिन नक्षत्रों की गति बदल जाती है
नियति नहीं है पूर्व निर्धारित–
उसको हर क्षण मानव–निर्णय बनाता मिटाता है।[15]

इस अंक में दो प्रहरी, विदुर, धृतराष्ट्र, गांधारी तथा वृद्ध याचक महाभारत के युद्ध के प्रति अपने–अपने दृश्टिकोण का परिचय देते हैं। वास्वत में यह अंक ''कौरवनगरी की टूटी हुई मर्यादा, अनास्थापरक मनोवृत्तियों तथा दास वृत्ति–ग्रस्त जीवन का चित्रण करता है।''[16]कथा गायन के साथ ही अंक समाप्त होता है।

द्वितीय अंक – दूसरा अंक 'पषु का उदय' का आरम्भ कथागायन के साथ होता है। प्रारम्भ में संजय की विवशता को व्यक्त किया गया है। वह तटस्थ दृश्टा शब्दों का शिल्पी होकर भी असमंजस के कंटक–वन में भटक जाता है। वह नवीन सत्य को पुराने शब्दों में व्यक्त न कर पाने तथा अन्धों से सत्य कहने की मर्मान्तक पीड़ा भोग रहा है, वह प्राण त्यागने की विवशता प्रकट करता है ––

कैसे बताऊँगा!/ वह जो सम्राटों का अधिपति था
खाली हाथ / नंगे पांव /रक्त सने
अच्छा था/ मैं भी / यदि आज नहीं बचता षेश
कैसे कहूँगा/ मैं जाकर उन दोनों से। [17]

इस अंक में अश्वत्थामा के चरित्र की महत्वपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। ''अश्वत्थामा का एकालाप रोचक है, क्योंकि वह अश्वत्थामा के चरित्र और भावी संघर्ष को निष्चित करने वाली आन्तरिक प्रेरणा अथवा कुण्ठा की नाटकीय जानकारी देता है।''[18] जब दुर्योधन ने नतमस्तक होकर अपनी पराजय स्वीकार कर ली, उसे निःषस्त्र और दीन आंखों से आँसू देखे तो अश्वत्थामा ने अपना धनुश मरोड़ दिया। पिता की निर्मम हत्या उसे बार–बार आहत करती है। पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए 'आत्मघात' करने की सोचता है, किन्तु उसमें प्रतिषोध की अग्नि भड़क उठती है ––

किन्तु नहीं/ जीवित रहूँगा मैं/ अन्धे बर्बर पशु–सा
वध केवल वध, केवल वध
अंतिम अर्थ बने / मेरे अस्तित्व का।[19]

वह पांडव योद्धा को अकेला, निहत्था देखकर पीछे से अपने भूखे हाथों से वार करने की बात सोचता है। वास्तव में वह क्रोध और प्रतिहिंसा का उबलता हुआ लावा बन जाता है, 'वध उसके लिए नीति नहीं, मनोग्रंथि'[20] बन जाता है। वह संजय का गला दबोच देता है तथा वृद्ध याचक, जो इस संदेष को दोहराता है कि ''केवल कर्म सत्य है/ मानव जो करता है/ इसी समय/ उसी में निहित है भविश्य/ युग–युग तक का ... निश्क्रियता नहीं/ आचरण में ही/ मानव अस्तित्व की सार्थकता है/''[21] की हत्या कर देता है। कृतवर्मा और कृपाचार्य भी जीवित बच जाते हैं, दोनों वार्तालाप को आगे बढ़ाते हैं तथा अश्वत्थामा को सांत्वना देते हैं। कथागायन के साथ अंक समाप्त होता है।

तृतीय अंक – तीसरा अंक 'अश्वत्थामा का अर्द्धसत्य' का प्रारम्भ कथागायन से होता है। संजय ढ़लती रात हस्तिनापुर पहुँचकर युद्ध कथा सुनाता है, गांधारी इस व्यथा–भरी कथा को सुनकर पत्थर हो जाती है। सारे नगर में हार से आतंक, त्रास और षोक छा जाता है। दोपहर होते–होते खंडित रथों, टूटे छकड़ों पर लदकर ब्राह्मण, स्त्रियाँ, चिकित्सक, विधवाएँ, घायल और जर्जर अवस्था में पहुँचते हैं। धृतराष्ट्र अपने हाथों से छू–छूकर अंग–भंग सैनिकों का अनुभव करते हैं। कौरवों की सेना के साथ विपक्षी योद्धा – धृतराष्ट्र के पुत्र युयुत्सु– का भी प्रवेश होता है जिसने सत्य का पक्ष लेने के लिए कौरव–पक्ष छोड़कर पांडव पक्ष ग्रहण किया था, किन्तु उसे यहाँ घृणा और उपेक्षा ही मिलती है, नगर के लोग उसे देखकर पट बन्द कर लेते हैं ––

बन्द कर लिये/ पट नागरिकों ने सबने कहा

वह है मायावी/ शिशुभक्षी/ दैत्याकार/ गृद्धवत्[22]

विदुर युयुत्सु को समझाते हैं कि इस घृणा, उपेक्षा से निराष नहीं होना चाहिए, क्योंकि अज्ञानी, भयडूबे, साधारण लोगों से, यह तो मिलती ही है, सदा उन्हें, जो कि एक निष्चित परिपाटी/ से होकर पृथक्/ अपना पथ अपने आप/ निर्धारित करते हैं।[23] माता गांधारी भी उस पर व्यंग्य बाण बरसाती हुई कहती है कि ''बेटा, भुजाएँ ये तुम्हारी, पराक्रम भरी, थकी तो नहीं, अपने बन्धुजनों का वध करते–करते।''[24] इस प्रकार सत्य का पक्ष लेने वाले युयुत्सु को कौरवनगरी में कहीं भी प्रषंसा नहीं मिली। प्यासा गूँगा सैनिक युयुत्सु के हाथ में पानी देखकर चीख उठता है, वह गिरता, पड़ता भाग जाता है। कैसी परिणति है सत्य की? यहाँ आस्था और अनास्था पर चलने वाले सब विवश नजर आते हैं। विदुर के शब्दों में

सबसे सब कैसे

उतर आये हैं अपनी धुनी से आज/एक–एक कर सारे पहिये

हैं उतर गये जिससे/ वह बिल्कुल निकम्मी धुरी

तुम हो/ क्या तुम हो प्रभु?[25]

इधर संजय समाचार लाता है कि द्वन्द्व युद्ध में राजा दुर्योधन पराजित हो गये हैं। इस समाचार से सारी नगरी में हाहाकार मच जाता है। संजय कृतवर्मा और कृपाचार्य को भी सूचित करता है कि राजा दुर्योधन अधर्म से मारे गये हैं। नेपथ्य से क्रोधित बलराम कृष्ण को 'कुटबुद्धि', 'मर्यादाहीन' बतलाते हुए कहते हैं कि तुम्हारी प्रभुता के बावजूद वे भी निष्चय मारे जायेंगे अधर्म से।[26]

युधिश्ठिर के अर्द्धसत्य से अश्वत्थामा की क्रोधाग्नि निरन्तर बढ़ती जाती है। वह जीवन की अंतिम साँस तक प्रतिशोध लेने की बात करता है। अब वह पराजित कौरव सेना का सेनापति है। अंत में अश्वत्थामा एक सोये हुए को एक उलूक द्वारा मारा जाते हुए देखता है, इससे उसको महत्वपूर्ण संकेत मिलता है। वह सोते हुए पांडवों तथा गर्भस्थ अभिमन्यु–पुत्र को मारने के लिए अकेला पांडव–शिविर की ओर भाग जाता है। यहीं पर अंक समाप्त हो जाता है।

अन्तराल – तीसरे और चौथे अंक के बीच अन्तराल है जिसका षीर्शक 'पंख, पहिये और पट्टियाँ है। इसमें अश्वत्थामा द्वारा मारा गया वृद्ध याचक, प्रेतात्मा के रूप में अंधायुग का परिचय देता है जो प्रतीकात्मक रूप में वर्तमान विशम परिस्थितियों की ही व्यंजना है –

यह युग एक अन्धा समुद्र है

चारों ओर से पहाड़ो से घिरा हुआ/ और दर्रों से

और गुफाओं से / उमड़ते हुए भयानक तूफान चारों ओर से

उसे मथ रहें/ और उस बहाव में मंथन है, गति है,

किन्तु नदी की तरह सीधी नहीं/ बल्कि नागलोक के ––

किसी गह्वर में/ सैंकड़ों केंचुल चढ़े, अन्धे साँप

एक–दूसरे से लिपटे हुए...

उसी तरह सैकड़ों धाराएँ–उपधाराएँ/ अंधे साँपों–

की तरह बिलबिला रही हैं।

ऐसा है यह अन्धा समुद्र

जिसे हम आज का भव प्रवाह कह सकते हैं।[27]

बाद में युयुत्सु, संजय, विदुर आदि पात्र अपनी वास्तविक स्थिति का आंतरिक मनोविश्लेशण करते हैं। युयुत्सु गलत धुरी में लगे उस पहिये के समान है जो अपनी धुरी से उतर गया है। संजय दो पहियों के बीच लगा हुआ एक निरर्थक छोटा–सा शोभा चक्र है जिसका स्वयं कोई अस्तित्व नहीं है। विदुर कृष्ण का अनुगामी, भक्त और नीतिज्ञ है लेकिन इन असाधारण परिस्थितियों में उसकी साधारण नीतियाँ असफल रहीं। अश्वत्थामा घृणा का वह कालिया नाग है जो प्रतिषोध ओर प्रतिहिंसा के भाव से पांडव षिविर में पहुँच जाता है, लेकिन शिविर के द्वार पर ही अश्वत्थामा के सम्मुख एक विराटकाय दैत्य पुरूष काली चट्टान के समान अड़ जाता है। पता नहीं यह कौन है? प्रेतात्मा घबराकर हथेलियों से आँखें बन्द कर लेता है।

चतुर्थ अंक – नाटक का चौथा अंक 'गांधारी का षाप' है। इस अंक में अश्वत्थामा का षंकर से वरदान पाकर पाण्डव योद्धाओं का वध, दुर्योधन की मृत्यु, संजय की दिव्यदृश्टि का खत्म होना, अश्वत्थामा द्वारा उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र चलाना और कृष्ण द्वारा जीवन रक्षा तथा अश्वत्थामा को भ्रूण हत्या का षाप देना, गांधारी द्वारा कृष्ण को षाप देना और कृष्ण द्वारा षाप को स्वीकार करना आदि महत्वपूर्ण घटनाएँ है। आशीर्वाद का समाचार सुनकर, गांधारी आगे की घटनाओं के लिए व्यग्र और जिज्ञासु हो उठती है। वह संजय से बार–बार यही पूछती है कि फिर क्या हुआ? फिर क्या हुआ? संजय समाचार देता रहता है। अश्वत्थामा ने शंकर की देवी असि लेकर धृश्टद्युम्न, षिखण्डी एवं अन्य योद्धओं का वध कर दिया तथा कृतवर्मा और कृपाचार्य षिविर में आग लगा देते हैं। बच्चे, बूढ़े, नौकर आदि बाणों से छेद दिये जाते हैं, भयमारे चिंघाड़ते हुए हाथी शिविरों में षैय्या पर सोयी हुई स्त्रियों को कुचल देते हैं। प्रतिशोध की अग्नि को षांत करने के लिए गांधारी इस दृष्य अवं अश्वत्थामा को देखने की इच्छा व्यक्त करती है। अश्वत्थामा पांडव उत्तराधिकारी, जो उत्तरा के गर्भ में पल रहा है, को मारने के लिए उद्यत है, इसी बीच महाराज दुर्योधन चल बसे, गांधारी चीखकर मूर्च्छित हो जाती है। अश्वत्थामा पुनः प्रतिज्ञा लेता है कि ––

जैसे तुम्हारी कोख कर दी है/ पुत्रहीन कृष्ण ने

वैसे ही मैं भी उत्तरा को कर दूँगा पुत्रहीन।[28]

संजय की दिव्य दृश्टि वापस हो जाती है। आगे धृतराश्ट्र, युयुत्सु, विदुर, संजय, गांधारी कौरवनगरी को छोड़कर युद्ध–स्थली की तरफ बंधु–बांधवों का तर्पण करने के लिए प्रस्थान करते हैं। अश्वत्थामा और अर्जुन का युद्ध होता है, जिससे अश्वत्थामा के गले में बाण चुभ जाता है, क्रोधाभिभूत अश्वत्थामा व्यास द्वारा ब्रह्मास्त्र का घातक परिणाम बताने पर भी प्रत्युत्तर में उसको फेंकता हैं ––

सुन लो कृष्ण–

यह अचूक अस्त्र अश्वत्थामा का

निष्चित गिरे जाकर/ उत्तरा के गर्भ पर।

वापस नहीं होगा।[29]

किन्तु कृष्ण ने उत्तरा के गर्भ की रक्षा कर ली–– 'उसे जीवित करूँगा मैं देकर अपना जीवन'[30] कृष्ण अश्वत्थामा को भ्रूणहत्या का शाप देकर मणि छीन लेते हैं, अश्वत्थामा खिन्न मन नतमस्तक चला जाता है।[31] षापग्रस्त अश्वत्थामा के

अंग–अंग में कोढ़ रोग उत्पन्न हो जाता है जिससे उसके षरीर में रोगी कुत्ते–सी दुर्गन्ध व्याप्त हो जाती है। अश्वत्थामा की इस दषा को देखकर क्रोधित गांधारी जन्म–जन्मान्तर के पुण्यों का बल लेकर कृष्ण को शाप देती है ––

सारा तुम्हारा वंष/ इसी तरह पागल कुत्तों की तरह
एक– दुसरे को परस्पर फाड़ खायेगा
तुम खुद उनका विनाष करके कई वर्शोबाद
किसी घने जंगल में/ साधारण व्याघ्र के हाथों मारे जाओगे
प्रभु हो/पर मारे जाओगे पषुओं की तरह।[32]

कृष्ण माता गांधारी को युद्ध की वास्तविकता ससे अवगत कराकर षाप स्वीकार करते हैं, किन्तु माता गांधारी अपने इस कार्य के प्रति दुख और पश्चाताप प्रकट करती हुई कहती है–' मैंने क्या किया विदुर? मैंने क्या किया?' गांधारी की कृष्ण के प्रति अगाध ममता उमड़ पड़ती है। कथा गाायन के साथ अंक समाप्त को जाता है।

पंचक अंक– पाँचवाँ अंक 'विजय :एक क्रमिक आत्महत्या' शीर्शक से है। इसका प्रारम्भ भी कथा गायन के साथ होता है। युधिश्ठिर के राज्याभिशेक के बाद भी कौरवनगरी की षोभ ओर सम्पन्नता लौटाका नहीं आ सकी। सारा राज्य विश्रासध्वसत, षापग्रस्त, पुण्य–हत, अस्त–व्यस्त बना रहा। महायुद्ध की यही परिणति हो सकती हं। सीाी पात्र चाहे विजयी हों या पराजित, विकृत, निश्क्रिय, आतमघाती और विगलित हो चले हैं, कुटुम्ब ह्रासोन्मुख है जिसे सवयं ऐसा लगाता है कि कुठ ही वर्शो में बाहर घिरा हुआ अंघेरा निगल जायेगा।[33] कृष्ण सुत्रधार होकर भी शापग्रस्त होने के कारण शक्तिहीन हैं, भीम मन्दबुद्धि किन्तु प्रकृति से अभिमानी, अर्जुन असमय वृद्ध हो चले, नकुल अज्ञानी, सहदेव अर्द्धविकसित। भीम की कटूक्तियों से मर्माहत होकर धृतराश्ट्र और गांधारी वन की ओर प्रस्थन करते हैं जहाँ वन में आग लगने से भस्म हो जाते हैं। सत्य और धर्म का पक्ष लेने वाले युयुत्सु को सभी की कटूक्तियाँ सनुने को मिलती हैं। वह राजमहल में भी और जनता में भी अपमानित होता है, यहाँ तक कि वह देखो!

भिखमंगे, लँगडे, लूले, गन्दे बच्चों की
एक बड़ी भीड़ उस पर ताने कसती
पीछे–पीछे चली आती है।
आह, वह पत्थर खींच मारा किसी ने।[34]

मानव– मूल्यों का प्रहरी, सत्य और धर्म का पक्षधर युयुतसु इस 'भीषण अवमानना और क्रर उपहार'[35] को सहन नहीं कर सका, उसने आत्महत्या कर ली। कृपावार्य इस आत्मधाती, नपुंसक और ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियों से युक्त संस्कृति के प्रति वितृष्णा प्रकट करते हैं। युधिश्ठिर जीवन की इस परिणति से दुखी होकर हिमालय के शिखरों में गल जाने का निश्यच करता है, उन्हें जीवन का कोई पथ षेश दिखाई नहीं देता है। दास वृत्ति के प्रतीक प्रहरी 'जैसे थे वैसे ही अब हैं, न खेया न पाया । अन्धे राजा के अन्धे आदेशों की प्रतीक करने वाली यह दास–जनता जीवन के ठहराव के अतिरिक्त क्या पा सकती है?

समापन– समापन में 'प्रभु की मृत्यु' है। यह अंतिम उपशीर्षक है। प्रभाव वन क्षेत्र में महासागर के तट पर छायामय पीपल के नीचे कृष्ण अपनी दरहिनी जाँघ पर बायाँ पैर रखे हुए युग की विचित्र स्थिति पर चिन्तन कर रहे हैं। कृष्ण के पेर को मृग–मुख समझाकर व्याघ्र बाण चलाता है। सहसा एक ज्योति चमककर बुझ जाती है। इस प्रकार गांधीजी का षाप फलीभूत होता है। दूसरी ओर प्रभुहीन धरा पर आस्थाहत कलियुग का अवतरण होता है। जब कृष्ण के पैर से

पीपभरा दुर्गन्धित नीला रक्त निकलता है तो अश्वत्थामा की पीड़ा षांत हो जाती है, वह कृष्ण की महिमा से अभिभूत जान पड़ता है। कृष्ण की मृत्यु के बाद अन्धे प्रेत के रूप में युयुत्सु प्रवेष करता हे और कृष्ण को वंचक, कायर, षक्तिहीन कहकर भला–बुरा कहता है। कृष्ण का वध करने वाला व्याघ्र प्रवेश करके कहता है कि पहले मैं वृद्ध याचक (ज्योतिष) था, फिर अश्वत्थामा के हाथों मरकर प्रेत बन गया, कृष्ण ने उससे कहा कि अश्वत्थामा के मस्तर पर उसका वध है, उस वध को प्रभु ने अपने ऊपर लेते हुए उससे कहा कि उन्हें मार कर वह प्रेत योनि से मुक्त हो जायेगा––

अश्वत्थामा ने किया था तुम्हारा वध
उसका था पाप, दण्ड मैं लूँगा
मेरा मरण तुमको मुक्त करेगा प्रेतकाया से।[36]

युयुत्सु कहता है कि प्रभु के इस कायर मरण के बाद मानव भविश्य का क्या होगा? व्याघ्र इसका उत्तर देते हुए कहता हे कि कृष्ण अवसान के क्षणों में यह कह गये थे कि यह मरण नहीं, मात्र रूपान्तरण है, जब तक मैं जीवित था, तब तक दायित्व अपने ऊपर सम्भाले रखा, 'अब अपना दायित्व सौंप जाता हूँ सबके'[37] मानव मन उस दायित्व को ग्रहण करके सभी परिस्थितियों का अतिक्रमण करके मर्यादा, निर्भयता, साहस और ममता के साथ पिछले सभी क्षणों पर नूतन निर्माण करेगा और ऐसे समय में मैं जीवित और सक्रिय हो उटूँगा बार–बार।[38]

अश्वत्थामा आज की अमानुशिक, कलुशित मानवता पर आशंका और व्यंग्य करता हुआ कहता है कि ''क्या हर मोटे से मोटा व्यक्ति विकृत, अर्द्धबर्बर, आत्मघाती, अनास्थामय अपने जीवन की सार्थकता पा जायेगा''[39] वह अन्त तक प्रश्नानुकूल ही बना रहता है। वास्तव में अन्याय, अत्याचार, अपमान द्वारा कुचली हुई मानवता जब हिंसक, अमानुषिक रूप धारण कर लेती है तो उसमें आस्था और विश्वास का भाव जाग्रत होना बहुत कठिन है। संजय अपंगु है तो युयुत्सु आत्मघाती अन्ध, लेकिन वृद्ध व्याघ्र का अन्तिम वक्तव्य रचना का मूल प्रतिपाद्य हैं इन्हीं अर्थों में मानवता की लज्जाजनक पराजय और करूणाजनक ह्रास के बावजूद अन्धायुग की कहानी नूतन मानवता की, आस्था की, साहस की, स्वतंत्रता की, नूतन सृजन की और ज्योति की कथा है, यथा ––

अन्धा संषय है लज्जाजनक पराजय है
पर एक तत्व है बीज रूप स्थित मन में
साहस में, स्वतंत्रता में, नूतन सृजन में
वह है निरपेक्ष उतरता है पर जीवन में।[40]

इस प्रकार 'अन्धायुग' आधुनिक हिन्दी कविता की बेजोड़ कलाकृति है और आधुनिक चिन्तन का कलात्मक दस्तावेज है। इसमें व्यक्त विकृति, विक्षिप्तता और रूग्णता कोई काल्पनिक उड़ान का परिणाम नहीं है, इसकी रचना अकारण और अकस्मात् नहीं हुई है, अपितु इसके पीछे ठोस ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक, विचारात्मक और भावात्मक कारण रहे हैं। यह कथा केवल दिषाहीनता की कहानी नहीं है, इसमें कवि ने एक मानवीय आदर्श की स्थापना कर समाज को साहस, स्वतंत्रता और नवीन सृजन की दिशा प्रदान की है। डॉ. हुकुमचन्द राजपाल ने लिखा है कि ''इसमें आदर्श और यथार्थ का सुन्दर सामंजस्य बन पड़ा है। विष्वव्यापी कुण्ठा, निराषा मनस्थिति, प्रतिशोध, विकृत भावना आदि के अन्तरंग विश्लेषण द्वारा जीवन के दुर्लभ सत्य की खोज संकेतित है।''[41]

'अन्धायुग' वर्तमान के विराट फलक पर लिखा गया काव्य है, इसलिए इसमें युग की अनेक नयी प्रवृत्त्यिाँ और समस्याएँ व्यक्त हुई हैं। युद्ध की विभीशिका और हिंसा, षासन ओर राजनीति का अन्धापन तथा स्वार्थलिप्सा, जनता की दासवृति

और निश्क्रियता, संशयग्रस्तता, मानव–मूल्यों की टकराहट और ह्रास, सत्य और धर्म की हानि, तटस्थता का खतरा, मर्यादाहीनता, बर्बरता, नर–पषुत्व, अनास्था, पीड़ा, कुण्ठा आदि अनेक समस्याएँ वर्तमान में गहरी बैठ चुकी हैं। व्यास की ब्रह्मास्त्र सम्बन्धी चिन्ता वर्तमान परमाणु–अस्त्रों की चिन्ता है। आज हम दो विश्वयुद्धों का कहर झेल चुके हैं, तीसरे की आषंका आतंकित कर रही है। ऐसे में व्यास का यह वक्तव्य नितान्त समसामयिक लगता है ––

ज्ञात क्या तुम्हें है परिणाम इस ब्रह्मास्त्र का?
यदि यह लक्ष्य सिद्ध हुआ हो नरपषु!
तो आगे आने वाली सदियों तक
पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी
षिषु होंगे पैदा विकलांग और कुण्ठाग्रस्त
सारी मनुश्य जाति बौनी हो जायेगी।[42]

युद्ध और हिंसा सदियों से संचित ज्ञान राशि को मिटा देगी, किन्तु फिर भी मानवता के विनाशक यही कहते हैं–– ‘भस्म हो जाने दो/ आने दो प्रलय/[43] यह कैसी मानवता हैं? युद्ध और हिंसा आज नीति या तार्किक नहीं केवल मनोग्रंथि है। आज मानव, उसकी मानवता और भविश्य विनाश के कगार पर खड़ा है। मानवता की परम्परा को मिटाने के लिए यह अंधी संस्कृति असंख्य अश्वत्थामाओं को जन्म दे रही है। आज धर्म और सत्य का पक्ष लेने वाले युयुत्सु नित्य उपेक्षित होकर आत्मघात करते हैं। भारती प्रहरियों के माध्यम से सामान्य जनता की दासता, उदासीनता और निश्क्रियता को ही व्यक्त करते हैं।

अन्धायुग में ह्रासोन्मुख राजनीतिक आदर्शों का चित्रण हुआ है। आज युग का सिंहासन अन्धों से शोभित है जो सारे वातावरण को हिंसा ओर रक्तपात में बदलकर ‘अन्धायुग’ की अवतारणा कर रहे हैं। आज की संस्कृति अन्धे धृतराश्ट्र की षापग्रस्त संस्कृति हैं ‘‘जिसकी सन्तानों ने / महायुद्ध घोशित किए, जिसके अन्धेपन में मर्यादा/ गलित अंग वेश्या–सी/’’[44] यथा राजा तथा प्रजा। आज हमारी संस्कृति के कोमल अंश ओर उसके भविश्य की भ्रूण–हत्या हो रही है जिसे ‘अन्धायुग’ पूरी मार्मिकता के साथ व्यक्त करता है। आस्था और अनास्था का द्वन्द भी अन्धायुग में मुखरित हुआ है। युयुत्सु कहता है ––

आस्था नामक यह घिसा हुआ/ सिक्का
अब मिला अश्वत्थामा को/ जिसे नकली ओर खोटा समझकर मैं
कूड़े पर फेंक चुका हूँ वर्शों पहले।[45]

पात्र–योजना एवं चरित्र–चित्रण की दृष्टि से ‘अन्धायुग’ में भारती को विशेष उपलब्धि मिली है। इन पात्रों में युगीन संवेदना प्रवाहित हुई है। इन पात्रों का संयोजन इस प्रकार हुआ है कि पौराणिकता को खण्डित किए बिना वर्तमान का अखण्ड प्रतिनिधित्व कर सके। डॉ. भवदेव पाण्डेय ने लिखा है कि ‘‘अन्धायुग में महाभारतीय पात्रों का समायोजन द्विविध और संष्लिष्ट रचना–प्रक्रिया के तहत किया गया है। महाभारत के कथा–प्रसंग में ये सभी पात्र चरित्र–प्रधान हैं। इन पात्रों का दोहरे रूप में निर्वहन ही ‘अन्धायुग’ के नाटकीय उत्कर्श का वैषिश्ट्य है। ये पात्र जहाँ व्यक्ति हैं, वहीं अतीत की गाथा भी हैं और जहाँ प्रवृति जीते हैं, वहाँ समकालीन विचारों के प्रतीक हैं। सच तो यह है कि ये दोनों रूपों में हैं, लेकिन इनका समकालीन सच ज्यादा भास्वर हे।’’[46] अन्धायुग में षिषु, नर्तक आदि को छोड़कर कुल सोलह पात्र हैं––

अश्वत्थामा, कृष्ण, गांधारी, धृतराष्ट्र, कृतवर्मा, संजय, वृद्ध याचक, विदुर, व्यास, युधिश्ठिर, कृपाचार्य, युयुत्सु, गूँगा भिखारी, बलराम, प्रहरी–1, प्रहरी–2। नाटक में प्रत्येक पात्र का विषिश्ट महत्व है, चाहे वह किसी भी कोटि का हो।

निष्कर्ष :

समग्रतः कहा जा सकता है कि अन्धायुग पौराणिक आख्यान पर आधारित होकर भी वर्तमान की मौलिक और दस्तावेजी अभिव्यक्ति है। यह अपने अंदर युग की समस्त प्रवृत्तियों–सत–असत को समेटे हुए है। युगीन यथार्थ की कुरूपता इसमें मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त हुई है। मूलतः भारती ने इन पौराणिक पात्रों में आधुनिक भंगिमाएँ प्रदान करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. अन्धायुग पाठ और प्रदर्शन : डॉ0 जयदेव तनेजा, पृष्ठ 42
2. अन्धायुग पाठ और प्रदर्शन : डॉ0 जयदेव तनेजा, पृष्ठ 46
3. अंधायुग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 10
4. हिन्दी नवलेखन : डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृष्ठ 85
5. मुक्तिबोध रचनावली भाग 5, सम्पादक : नैमिचन्द जैन, पृष्ठ 442
6. अंधायुग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 11
7. पुराख्यान और कविता : डॉ0 लक्ष्मीनारायण शर्मा, पृष्ठ 103
8. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 19
9. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 18
10. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 85
11. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 81
12. धर्मवीर भारती : साहित्य के विविध आयाम : डॉ0 हुकुमचन्द राजपाल, पृ. 46–47
13. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 3
14. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 13
15. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 22
16. धर्मवीर भारती और उनका अन्धायुग : डॉ0 मदनलाल, पृष्ठ 31
17. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 26–27
18. अंधा युग पाठ और प्रदर्शन : डॉ0 जयदेव तनेजा, पृष्ठ 52
19. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 30
20. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 32
21. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 34
22. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 44
23. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 44
24. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 45
25. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 47
26. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 49
27. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 57
28. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 67
29. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 74
30. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 75
31. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 75
32. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 78
33. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 81
34. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 84

35. कविता और पुराख्यान : डॉ0 लक्ष्मीनारायण शर्मा, पृष्ठ 102
36. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 97
37. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 98
38. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 99
39. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 99
40. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 100
41. धर्मवीर भारती : साहित्य के विविध आयाम : डॉ0 हुकुमचन्द राजपाल, पृ.52
42. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 73
43. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 73
44. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 12
45. अन्धा युग : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 95–96
46. अन्धा युग : अधुनातन दृष्टि, डॉ0 भवदेव पाण्डेय, पृष्ठ 40